प्रथमावृत्ति ५,०००
दिनाक १७ अक्टूबर, १९८२
[आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, जयपुर के अवसर पर]

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
जयपुर प्रिण्टर्स
एम० आई० रोड
जयपुर

प्रकाशकीय

चर्म-चक्षुओ के विषयो मे मुग्ध जगत को सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ का दर्शन करानेवाली 'अद्वितीय चक्षु' प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत कृति श्री प्रवचनसार ग्रन्थ की गाथा ११४ पर हुए पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के गुजराती प्रवचनो के हिन्दी अनुवाद के रूप मे प्रकाशित की जा रही है।

पूर्वविदेह क्षेत्र मे विद्यमान तीर्थंकर सीमधर स्वामी के समवशरण मे जाकर उनकी साक्षात दिव्यध्वनि सुननेवाले कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार, प्रवचनसार आदि परमागमो की भेंट देकर भरतक्षेत्र के जीवो पर अनन्त उपकार किया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित ग्रन्थो मे प्रवचनसार भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ ज्ञानप्रधान शैली मे वस्तुस्वरूप का वर्णन करता है, फिर भी सर्वत्र अध्यात्म की सौरभ से सुगन्धित है – यही इसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने इस पर अनेक वार आद्योपान्त प्रवचन किये हैं। इस ग्रन्थ की महिमा का यथार्थ परिचय तो इसके गहन अध्ययन द्वारा ही प्राप्त हो सकता है, फिर भी प्रस्तुत कृति से उसका नमूना तो मिल ही सकता है।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी, इस युग मे आचार्य कुन्दकुन्द आदि दिगम्बर सन्तो एव आत्मज्ञानी विद्वानो द्वारा लिपिवद्ध जिनवाणी के सरलतम व्याख्याकार, आत्मानुभवी महापुरुष हो गए हैं। उनके अन्तर्मुखी पुरुषार्थप्रेरक प्रवचनो ने लाखो लोगो को 'अद्वितीय चक्षु' प्रदान की है। सरलभाषा एव रोचक शैली मे जिनागम का मर्म समझाकर, उन्होने हम सब पर अनन्त उपकार किया है। उनके द्वारा प्रारम्भ आध्यात्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप जनसाधारण

में भी जिनागम का अध्ययन करने की रुचि, उसे समझने की क्षमता, एव जीवन मे उतारने की प्रेरणा प्रस्फुटित हुई है।

इस कृति मे सकलित पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनो को, टेपरिकार्ड से सुनकर लिखने मे तथा उन्हें व्यवस्थित करने मे श्रीमान् पण्डित हीरालाल भीखालाल दहेगाँववाले, श्री रमणलाल माणिकलाल शाह एव श्री हेमन्तभाई गाँधी ने अपना अमूल्य सहयोग दिया है, जिसके फलस्वरूप श्री शान्तिभाई सी० जवेरी बम्बईवालो ने इसे गुजराती मे प्रकाशित किया है। प्रस्तुत कृति गुजराती प्रकाशन का हिन्दी अनुवाद है। प० अभयकुमारजी शास्त्री ने इसका हिन्दी अनुवाद करने की सहर्ष स्वीकृति दी एव अत्यल्प समय मे अनुवाद कर दिया। एतदर्थ उपर्युक्त सभी महानुभावो के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

सभी लोग इस कृति के अध्ययन से वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझकर शुद्धात्मतत्त्व की शीतल छाया मे शाश्वत सुख प्राप्त करें – यही कामना है।

ए-४, बापूनगर
जयपुर – ३०२०१५

नेमीचन्द पाटनी
मन्त्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

पज्जय गउणं किच्चा, दव्वं पि य जो हु गिह्णये लोए।
सो दव्वत्थिय भणिओ, विवरीओ पज्जयत्थिओ ॥

पर्याय को गौण करके जो द्रव्य को ग्रहण करता है, वह द्रव्यार्थिकनय है और उससे विपरीत पर्यायार्थिकनय है अर्थात् द्रव्य को गौण करके जो पर्याय को ग्रहण करता है, वह पर्यायार्थिकनय है।

– माइल्लधवल : द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा १८९

अनुवादक की ओर से

अद्वितीयचक्षु-प्रदाता पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी ने अपने सरल एवं वोधगम्य प्रवचनों में जिनागम का मर्म खोलकर हम सब पर अनन्त-अनन्त उपकार किया है। टेपों में सुरक्षित तथा पुस्तकाकार प्रकाशित उनके प्रवचन हमारी अमूल्य निधि हैं। ये प्रवचन अधिकाश गुजराती में हुए हैं, अतः हिन्दी भाषा में इनका अनुवाद एवम् प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद कार्य महान सौभाग्य एव गौरव का विषय होते हुए भी अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण है।

लगभग १५ वर्ष पहले मुझे पूज्य गुरुदेवश्री के समागम में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ व उनकी कृपा से जिनवाणी के अध्ययन-मनन की रुचि जागृत हुई तथा तभी से वरावर श्रुत-सिन्धु में भरे हुए रत्नों की प्राप्ति का प्रयास जारी है।

आत्मधर्म (हिन्दी) के लिए तीन वर्ष तक उनके समयसार पर हुए प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद करने का भी मुझे अवसर मिला, तथा अव इस अद्वितीय चक्षु के अनुवाद का अवसर पाकर अपने को सौभाग्यशाली अनुभव करता हूँ।

अनुवाद करने में मूलभावों को अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ भाषा के सहज प्रवाह का भी ध्यान रखा गया है। इस कार्य में माननीय डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल का अमूल्य मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है, एतदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस कृति के अध्ययन-मनन द्वारा सभी लोग 'अद्वितीय चक्षु' प्राप्त करके शुद्धात्मतत्त्व का दर्शन करें – यही भावना है।

– अभयकुमार जैन

दोनों नयों की सफलता

जीव का स्वरूप दो नयों से बराबर ज्ञात होता है। अकेले द्रव्यार्थिकनय या अकेले पर्यायार्थिकनय से ज्ञात नहीं होता; इसलिए दोनो नयों का उपदेश ग्रहण करने योग्य है।

एकान्त द्रव्य को ही स्वीकार करे और पर्याय को स्वीकार न करे तो पर्याय के बिना द्रव्य का स्वीकार किसने किया? काहे में किया? और मात्र पर्याय को ही स्वीकार करे, द्रव्य को स्वीकार न करे तो पर्याय कहाँ दृष्टि लगाकर एकाग्र होगी? इसलिए दोनों नयो का उपदेश स्वीकार करके द्रव्य-पर्याय की संधि करने योग्य है।

द्रव्य-पर्याय की संधि का अर्थ क्या? पर्याय को पृथक् करके लक्ष में न लेते हुए, अन्तर्मुख करके द्रव्य के साथ एकाकार करना अर्थात् द्रव्य-पर्याय के भेद का विकल्प तोड़कर एकतारूप निर्विकल्प-अनुभव करना ही द्रव्य-पर्याय की संधि है—वही दोनों नयों की सफलता है।

पर्याय को जानते हुए उसी के विकल्प में रुक जाये तो वह नय की सफलता नहीं है; उसीप्रकार द्रव्य को जानते हुए यदि उसी में एकाग्रता न करे तो वह भी नय की सफलता नहीं है। द्रव्य-पर्याय दोनों को जानकर दोनों के विकल्प तोड़कर पर्याय को द्रव्य मे अंतर्लीन, अभेद, एकाकार करके अनुभव करने में ही दोनो नयों की सफलता है।

—पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी

(आत्मधर्म, वर्ष १६, अंक १८२, जून १९६०, कवरपृष्ठ २)

अद्वितीय चक्षु

प्रवचनसार गाथा ११४

अथैकद्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वविप्रतिषेधमुद्‌धुनोति –

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्ण तक्काले तम्मयत्तादो ॥११४॥

द्रव्यार्थिकेन सर्वं द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुन ।
भवति चान्यदनन्यत्तत्काले तन्मयत्वात् ॥११४॥

अथैकद्रव्यस्य पर्यायैस्सहानन्यत्वाभिधानमेकत्वमन्यत्वाभिधानमनेकत्व च नयविभागेन दर्शयति, अथवा पूर्वोक्तसद्भावनिबद्धासद्भावनिबद्धमुत्पादद्वय प्रकारान्तरेण समर्थयति – हवदि भवति । किं कर्तृ ? सव्व दव्व सर्वं विवक्षिताविवक्षितजीवद्रव्यम् । किं विशिष्ट भवति ? अणण्णं अनन्यमभिन्नमेक तन्मयमिति । केन सह ?

अब एक ही द्रव्य के अन्यपना और अनन्यपना होने मे जो विरोध है, उसे दूर करते हैं । (अर्थात् उसमे विरोध नहीं आता – यह बतलाते हैं ।)

अन्वयार्थ :– [द्रव्यार्थिकेन] द्रव्यार्थिक (नय) से [सर्वं] सब [द्रव्यं] द्रव्य हैं, [पुन: च] और [पर्यायार्थिकेन] पर्यायार्थिक (नय) से [तत्] वह (द्रव्य) [अन्यत्] अन्य-अन्य है, [तत्काले तन्मयत्वात्] क्योकि उससमय तन्मय होने से [अनन्यत्] (द्रव्य पर्यायो से) अनन्य है ।

सर्वस्य हि वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकत्वात्तत्स्वरूपमुत्पश्यतां यथाक्रमं सामान्यविशेषौ परिच्छिन्दती द्वे किल चक्षुषी, द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं चेति। तत्र पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्य-देवसिद्धत्वपर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यमेकमवलो-कयतामनवलोकितविशेषाणां तत्सर्वं जीवद्रव्यमिति प्रतिभाति। यदा तु द्रव्यार्थिकमेकान्तनिमीलित विधाय केवलोन्मीलितेन पर्यायार्थिकेना-वलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्व-

---

तेन नारकतिर्यङ् मनुष्यदेवरूपविभावपर्यायसमूहेन केवलज्ञानाद्यनन्त-चतुष्टयशक्तिरूपसिद्धपर्यायेण च। केन कृत्वा ? दव्वट्ठिएण शुद्धान्वय-द्रव्यार्थिकनयेन। कस्मात् ? कुण्डलादिपर्यायेषु सुवर्णस्येव भेदाभावात्। तं पज्जयट्ठिएण पुणो तद्द्रव्य पर्यायार्थिकनयेन पुन अण्णं अन्य-द्भिन्नमनेक पर्यायै सह पृथग्भवति। कस्मादिति चेत् ? तक्काले

टीका :– वास्तव मे सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से वस्तु का स्वरूप देखनेवालो के क्रमश सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं – (१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक।

इनमे से पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा वन्द करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तव नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को न देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। और जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा वन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब जीवद्रव्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्याय-स्वरूप अनेक विशेषो को देखनेवाले और सामान्य को न देखनेवाले

पर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्य-दन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेना-नन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदानारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थित जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशाव-

---

तम्मयत्तादो तृणाग्निकाष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायै सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्त भवति ? द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्व पर्यायकदम्बक द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्न भिन्न प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षनयद्वयेन

जीवो को (वह जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि द्रव्य उन-उन विशेपो के समय तन्मय होने से उन-उन विशेपो से अनन्य है—कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्नि की भाँति । (जैसे घास, लकडी इत्यादि की अग्नि उस-उस समय घासमय, लकडीमय इत्यादि होने से घास, लकडी इत्यादि से अनन्य है, उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेपो के समय तन्मय होने से उनसे अनन्य है, पृथक् नही है ।) और जव उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो आँखो को एक ही साथ खोलकर उनके द्वारा और इनके द्वारा (द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओ के द्वारा) देखा जाता है, तव नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना—पर्यायोमे रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीवसामान्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धत्व—पर्याय-स्वरूप विशेप तुल्यकाल मे ही (एक ही साथ) दिखाई देते है । वहाँ एक आँख से देखा जाना, वह एकदेश अवलोकन है और

लोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकन । तत. सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वं च न विप्रतिषिध्यते ॥[1]

युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्व च युगपत्प्रतिभातीति । यथेद जीवद्रव्ये व्याख्यान कृत तथा सर्वद्रव्येषु यथासभव ज्ञातव्यमित्यर्थ ॥[2]

दोनो आँखो से देखना, वह सर्वावलोकन (सम्पूर्ण अवलोकन) है । इसलिए सर्वावलोकन मे द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नही होते ।

भावार्थ :– प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य 'वह का वह' भी रहता है और 'वदलता' भी है । द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होने से द्रव्य के अनन्यत्व मे और अन्यत्व मे विरोध नही है । जैसे – मरीचि और भगवान महावीर का जीवसामान्य की अपेक्षा से अनन्यत्व और जीव के विशेषो की अपेक्षा से अन्यत्व होने मे किसी प्रकार का विरोध नही है ।

द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षु से देखने पर द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिए द्रव्य अनन्य अर्थात् 'वह का वही' भासित होता है और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी चक्षु से देखने पर द्रव्य के पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते है, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है । दोनो नयरूपी दोनो चक्षुओ से देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्य के विशेष दोनो एकसाथ ज्ञात होते हैं, इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनो भासित होता है ।

---

[1] अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका

[2] जयसेनाचार्यकृत टीका

उत्थानिका व गाथा पर प्रवचन

यहाँ आचार्यदेव सामान्य-विशेषात्मक द्रव्य का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि द्रव्य सामान्यपने वैसे का वैसा ही अर्थात् अनन्य है और विशेषपने भिन्न-भिन्न – अन्य-अन्य है। अहाहा ! वस्तु पर्याय-अपेक्षा अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्य-अपेक्षा अनन्य ही है। यद्यपि यहाँ जीवद्रव्य पर अनन्यत्व व अन्यत्व घटित करेगे, तथापि प्रत्येक द्रव्य सामान्य अर्थात् वही का वही – अनन्य है तथा विशेष अर्थात् अन्य-अन्य भी है। द्रव्य के विशेष अर्थात् पर्याये स्वकाल मे अन्य-अन्य होते हुए भी उस द्रव्य से अनन्य ही हैं, द्रव्य से भिन्न नही हैं। भाई ! यह तो प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप का कथन है।

कर्म, शरीर, परिवार, पैसा, इज्जत आदि के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि ये सब परद्रव्य तो आत्मा से भिन्न ही है, अन्य ही हैं, अनन्य नही हैं। यहाँ तो द्रव्य को अपने मे ही अन्यत्व व अनन्यत्व होने मे विरोध नही है – यह बात सिद्ध करते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप मे कायम रहकर प्रतिसमय भिन्न-भिन्न अर्थात् अन्य-अन्य अवस्थारूप होता है, अत पर्याय-अपेक्षा उसे अन्य-अन्य भी कहा जाता है और वह अवस्था द्रव्य की ही है, द्रव्य स्वय ही उस अवस्थारूप परिणमित हुआ है, इसलिये वह अनन्य भी कहा जाता है। अहाहा ! इसमे सारी दुनिया का परिचय दे दिया है।

अहाहा ! क्या सूक्ष्म तत्त्वज्ञान है। कहते हैं कि पर्याय मे जीव को नारकी आदि अनेकपना होते हुए भी जीव अनन्य है, क्योकि आत्मा के साथ वह पर्याय तन्मय है। चाहे हिंसा के परिणाम हो या भक्ति-पूजा-दया-दान आदि के परिणाम हो या रौद्रध्यान के परिणाम हो – ये सभी परिणाम द्रव्य की पर्याय मे हैं। वे परिणाम भिन्न-

भिन्न अवस्थारूप है, इसलिये आत्मा को अन्य-अन्य भी कहा जाता है और आत्मा उन परिणामो मे वर्त्तता है, इसलिए अनन्य भी कहा जाता है। परपदार्थों के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि वे तो सर्वथा भिन्न ही हैं, अनन्य नही हैं। यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अन्य-अन्य उत्पन्न होती हुई द्रव्य से अनन्य है। अहाहा ! जो अन्य है, वही अनन्य है—ऐसा अविरोधपने सिद्ध करते हैं।

अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका पर प्रवचन

वास्तव में सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से वस्तु का स्वरूप देखनेवालो के क्रमशः सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं—(१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक।

देखो, यहाँ द्रव्य शब्द का प्रयोग न करके 'वस्तु' कहा है। **सर्वस्य हि वस्तुनः**—ऐसा कहा है, क्योकि इसमे अनन्त शक्तियाँ बसी हुई हैं। अहाहा ! प्रत्येक द्रव्य को, चाहे वह परमाणु हो, आकाश हो या जीव हो—वस्तु कहा है; क्योकि उसमे अनन्त अन्वयी गुण बसे हुए हैं। द्रव्य अनन्त-अनन्त गुणो—शक्तियो द्वारा भरा हुआ है, इसलिए उसे वस्तु कहा है। द्रव्य मे बसी हुई शक्तियाँ तद्रूपपने द्रव्य की स्वय की हैं। ऐसा नही है कि दूसरे की शक्ति यहाँ वस्तु मे आ गई हो या वस्तु दूसरे की शक्तियो मे जा बसी हो। देखो, यह वस्तु का स्वरूप ! सबसे निकट अपना शरीर या स्त्री-परिवार आदि सब बिलकुल भिन्न चीजें हैं, जबकि द्रव्य का विशेष अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्य से अनन्य है, क्योकि वह विशेष—पर्याय द्रव्य से भिन्न चीज नही है। जैसे परद्रव्य बिलकुल भिन्न है, वैसे ही भिन्न-भिन्न पर्यायें भी बिलकुल भिन्न ही है—ऐसा नही है। [यद्यपि पहले नही थी और बाद मे उत्पन्न हुई है—इस अपेक्षा से उसे अन्य भी कहा है, तथापि उसमे द्रव्य वर्त्तता है—इस अपेक्षा से अनन्य भी है।

देखो ! **वास्तव मे सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से** – इस वाक्य मे सर्व अर्थात् अनन्त वस्तु के सम्बन्ध मे कहा है, एक वस्तु के सम्बन्ध मे नही कहा । प्रत्येक वस्तु स्वय अपने से ही सामान्य-विशेपात्मक है, द्रव्यरूप से सामान्य और पर्याय-अपेक्षा विशेषरूप है – ऐसा द्रव्य का सामान्य-विशेषस्वरूप स्वत है । जैसे सामान्यपना – एकरूपपना द्रव्य का स्वरूप है, उसीप्रकार विशेषपना – अन्यरूपपना भी उसका स्वरूप ही है । विशेष अर्थात् पर्याय परसयोग या पर के द्वारा होती है – ऐसा नही है । प्रत्येक द्रव्य की उस-उस समय की वह विशेष अवस्था पहले नही थी और बाद में हुई, इसलिए वह भिन्न द्रव्य के कारण हुई है – ऐसा नही है । पहले नही थी और बाद मे हुई – इस अपेक्षा से पर्याय अन्य है, तो भी उस विशेष – पर्याय मे सामान्य वर्त्तता है, इसलिये वह अनन्य भी है, वह सामान्य से भिन्न चीज नही है । जैसे अन्य सभी परद्रव्य बिलकुल भिन्न हैं, वैसे पर्याय सामान्य से भिन्न नही है ।

देखो ! एक आत्मा का दूसरे आत्मा से कोई सम्बन्ध नही है । यहाँ सामान्यपने सभी आत्माएँ एक हैं और विशेषपने भिन्न हैं – ऐसा नही है । अथवा, वे सामान्यपने भिन्न है और विशेषपने एक हैं – ऐसा भी नही है । इसीप्रकार अन्य समस्त आत्माएँ तथा अनन्त परमाणु इस आत्मा से सामान्य-अपेक्षा भिन्न तथा विशेष-अपेक्षा एक हैं – ऐसा भी नही है । अथवा, सामान्य-अपेक्षा एक तथा विशेप-अपेक्षा भिन्न हैं – ऐसा भी नही है । यहाँ तो स्वय ही अन्य-अन्य और स्वय ही अनन्य है – यह बात कही जा रही है ।

अहाहा ! अपने द्रव्य मे प्रगट होनेवाली प्रत्येक पर्याय का काल अर्थात् क्रमानुपाती स्वकाल है । (यह बात गाथा ११३ मे कही जा चुकी है ।) जो पर्याय स्वकाल मे क्रमानुसार आनेवाली थी, वही पर्याय आई है । पूर्व पर्यायो की अपेक्षा से उसे अन्य कहते हैं, परन्तु वस्तु

की अपेक्षा अनन्य है। इसलिए वह पर्याय किसी अन्य से हुई है – ऐसा है ही नही।

भाई! भाषा तो सरल है, परन्तु उसका भाव वैठना कठिन है; तथापि न बैठे – ऐसा भी नही है। समयसार कलश ६० की पाँडे राजमलजी कृत बालबोधिनी टीका मे आता है कि "ज्ञान भिन्न व क्रोध भिन्न – ऐसा अनुभवना वस्तुत कठिन ही है, पर वस्तु का शुद्ध-स्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है। (आत्मज्ञान होता है।)" भाव बैठना कठिन तो है, परन्तु द्रव्यसामान्यरूप भगवान आत्मा को देखने से अन्तर मे भाव बैठ जाता है। भले ही देखनेवाली पर्याय विशेष है, परन्तु वह देखती है सामान्य को। यह पर्याय ऐसा मानती है कि मैं अखण्ड एक ज्ञायकस्वरूप विराजमान हूँ। अहाहा! इस पर्याय का विषय मात्र पर्याय न रहकर द्रव्य बन जाता है, तब अन्तर मे भाव बैठ जाता है।

यहाँ कहते है – वास्तव मे सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। इसका यह अर्थ है कि वस्तु किसी अन्य से बनी है या कोई ईश्वर इसका कर्त्ता है – ऐसा नही है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय को नही कर सकता। सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है अर्थात् कायम रहने की अपेक्षा से सामान्यरूप और पलटने की अपेक्षा से विशेषरूप हैं। सामान्य और विशेष – ये दोनो द्रव्य के स्वरूप हैं। आगे भी द्रव्य का स्वरूप दो रूप है – ऐसा आएगा।

प्रश्न :– अनुकूल स्त्री और पुत्र के साथ भी आत्मा का सम्बन्ध नही है क्या?

उत्तर :– भाई! किसकी पत्नी और किसका पुत्र? जहाँ वस्तु का विशेष भी मात्र एकसमय टिकता है, वहाँ पत्नी-पुत्रादि आत्मा के हैं – यह बात कहाँ रही? प्रभु! प्रत्येक वस्तु कायम रहने की अपेक्षा ध्रुव है, तो भी उसका विशेष एकसमय मात्र ही टिकता है।

पर्याय द्रव्य की होते हुए भी, एकसमय मात्र ही टिकती है, इसलिये पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसे अन्य भी कहते है तथा उसमे द्रव्य वर्त्तता है, इसलिये अनन्य भी कहा है, परन्तु आत्मा से पर का तथा परमाणु से परमाणु का परस्पर कोई सम्बन्ध नही है। लोगो को यह बात कठिन लगती है, परन्तु उन्हे विचार करने की फुरसत ही कहाँ है? सारा दिन घन्धा-व्यापार, कुटुम्ब-परिवार की सम्हाल और दुनिया के जजाल मे ही बीत जाता है और जिन्दगी ऐसे ही ऐसे पूरी हो जाती है।

मूल गाथा मे वस्तु को सामान्य और विशेष से देखने की बात कही है परन्तु टीका मे दोनो को साथ मे देखने की बात भी कहेगे।

सर्वप्रथम कहते हैं कि **इनमे से पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके** · । देखो, यहाँ से शुरू किया है। द्रव्यार्थिक चक्षु को बन्द करके—ऐसी शुरूआत नही की। द्रव्य को देखने के लिए पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बन्द कर दे। गजब बात है भाई! पर्याय है अवश्य, परन्तु उसकी तरफ देखनेवाली दृष्टि को बन्द कर दे—इसप्रकार बात शुरू की है। पहले तो यह कहा कि वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। विशेष नही है—यह बात कहाँ है? परन्तु अब विशेष को देखने की आँख बन्द करके—ऐसा कहा। अहाहा! कथञ्चित् बन्द करके—ऐसा नही कहा, परन्तु पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाता है—ऐसा कहा। अहाहा! त्रिकाली द्रव्य को जानना है न? तो विशेष नय की आँख बन्द करके, द्रव्य जिसका प्रयोजन है—ऐसे द्रव्यार्थिक नय की आँख से देख, यह कहा है।

अवस्था को देखनेवाली पर्यायार्थिक आँख को बन्द कर दे और द्रव्यसामान्य को देखने-जाननेवाली द्रव्यार्थिक आँख से देख, इससे तुझे अवस्था मे द्रव्यसामान्यरूप भगवान-आत्मा ज्ञात होगा।

अवस्था को देखनेवाली आँख वन्द करके सामान्य को देखने पर भी, देखनेवाली विशेप पर्याय तो रहेगी, परन्तु देखनेवाली पर्याय का विपय विशेप नही, सामान्य रहेगा।

यहाँ कहते हैं कि विशेप को देखनेवाली पर्यायार्थिक आँख वन्द कर दे। दूसरे को देखना वन्द कर दे — यह वात तो एक तरफ रही, क्योंकि परपदार्थों को देखनेवाली दृष्टि — पर्यायार्थिक या द्रव्यार्थिक नही कहलाती। मात्र अपने मे दो प्रकार हैं, सामान्यपना अर्थात् कायम रहना और विशेपपना अर्थात् वदलना। इन दोनो को देखने वाली दो आँखे है। अव कहते हैं कि विशेप को देखनेवाली आँख को विलकुल वन्द करके खुली हुई द्रव्यार्थिक आँख मे देख। भाई ! भारी गजव वात है ! थोडे शव्दो मे वहुत भरा है !

यहाँ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन आदि को देखना वन्द कर दे — ऐसा नही कहा, क्योंकि जो स्वरूप मे नही है, उसकी वात क्यो करें ? प्रभु ! तेरे स्वरूप मे सामान्य और विशेप — दो पहलू हैं, अव इनमे से विशेष को देखनेवाली आँख सर्वथा वन्द कर दे और खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से देख। देखो, विशेप को देखनेवाली आँख कथञ्चित् वन्द कर दे और कथञ्चित् खुली रख अथवा उसे गौण कर दे — ऐसा नही कहा। पर्याय को देखना वन्द कर दिया अर्थात् द्रव्य को देखने वाला ज्ञान प्रगट हो गया। द्रव्यार्थिक चक्षु से द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान भी है तो पर्यायरूप, परन्तु उसका विषय द्रव्य है। अहो ! यह तो तत्काल सम्यग्दर्शन प्रगट होने की वात है। कितनी गभीर टीका है ! भरतक्षेत्र मे ऐसी वात अन्यत्र कहाँ है ? सन्तो ने त्रिलोकीनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि मे अमृत वरसाया है। जगत का महाभाग्य है कि ऐसी वाणी रह गई। (अर्थात् आज तक उपलव्ध है।) भाई ! ऐसी वाणी सुनने का सौभाग्य मिला और तुझे फुरसत नही है ? भगवान ! तुझे कहाँ जाना है, कहाँ रहना है ? इसका विचार तो कर।

पहले कहा कि सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। अब कहते हैं कि तुझे अपनी वस्तु को देखना हो तो पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बन्द करके, खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से देख। पर्यायार्थिक आँख बन्द करके, पर को देख – ऐसा नही कहा। यहाँ तो अमृतस्वरूप भगवान आत्मा को देखने की बात है। सन्तो ने तो अमृत बरसाया है, परन्तु अरे! जगत को उसकी दरकार कहाँ है ?

भगवान! तुझ मे सामान्य और विशेष – ऐसे दो प्रकार है। यहाँ बात तो सभी द्रव्यो की करना है, परन्तु जीव मे घटित करके समझाया गया है।

अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका मे स्पष्ट नही कहा, परन्तु जयसेनाचार्य की टीका मे स्पष्ट कहा है। **सर्वद्रव्येषु यथासंभव ज्ञातव्यमित्यर्थः** – ये जयसेनाचार्यकृत टीका के अन्तिम शब्द हैं। भाई! यह तो धैर्यवान पुरुष का काम है। समयसार कलशटीका मे कहा है कि निभृत अर्थात् स्वरूप मे एकाग्र होनेवाले निश्चिन्त पुरुषो द्वारा इस वस्तु का विचार किया जाता है।

पहले 'पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके' – ऐसा कहकर जोर दिया और अब उससे भी अधिक जोर देने के लिए कहते है – **जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है।**

ज्ञान को इसप्रकार खोलकर देख कि द्रव्य दिखाई दे। 'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा' – ऐसा कहा है न ? अर्थात् द्रव्य को देखने वाले प्रगट ज्ञान द्वारा देख! जब पर्याय को देखना बन्द कर दिया, तब स्वद्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हुआ। द्रव्य को जो नय देखता है – ऐसा नय प्रगट हुआ।

जब पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है; तब नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्यायस्वरूप विशेषो में रहनेवाले

एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को न देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है।

देखो ! देखनेवाली स्वयं पर्याय है, परन्तु वह पर्याय को देखना बन्द करके द्रव्य को देखनेवाले प्रगटज्ञान के द्वारा द्रव्यसामान्य को देखती है। अहाहा ! क्या अमृत भर दिया है। अज्ञानी ऐसे ही (भाव समझे विना) पढ जाता है और मान लेता है कि हमने स्वाध्याय किया। परन्तु भाई ! यह प्रवचनसार अर्थात् दिव्यध्वनि का सार है, अत्यन्त गहन चीज है। एक भाई समयसार के सम्बन्ध मे कहते थे कि महाराज (श्री कानजी स्वामी) समयसार का वहुत वखान करते हैं, परन्तु मैने तो उसे पन्द्रह दिनो मे ही पढ लिया। अरे भाई ! समयसार बहुत गहन चीज है। प्रभु ! मात्र ऐसे ही पढ लेने से उसका रहस्य नही समझा जा सकता।

प्रश्न – श्रीमद् राजचन्द्र ने छह पद कहे है, उनमे सम्यग्दर्शन की व्याख्या की है, तो इन छह पदो को तो देखना चाहिए न ?

उत्तर :– भाई ! यहाँ तो कहते है कि इन छह पदो के भेद को देखनेवाली आँख को सर्वथा वन्द कर ! भाई, यह तो अमृत का घर है। वडी मुश्किल से वाहर आया है, इसलिये इसे धीरज से सावधान होकर सुनना, समझना – ऐसा समय फिर कव आएगा ?

अहाहा ! कितने गम्भीर भाव भरे है। सामान्य और विशेप को जाननेवाली दो आँखें है अर्थात् देखनेवाला आत्मा अपने सामान्य और विशेष को देखता है, परन्तु पर को नही। अपनी विशेष पर्याय मे परपदार्थ ज्ञात होते हैं, परन्तु वास्तव मे तो अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है। सामान्य और विशेष को देखनेवाले दो चक्षु कहे है, परन्तु पर की वात नही की।

वस्तुस्वरूप को देखनेवालो की अनुक्रम से सामान्य और विशेप को जाननेवाली दो चक्षु हैं, यहाँ 'अनुक्रम' शव्द का प्रयोग किया है।

पहले सामान्य को जानना, फिर विशेष को जानना, क्योकि सामान्य का यथार्थ ज्ञान होने पर ही विशेष का यथार्थ ज्ञान होता है। यहाँ पर को जानने की बात नही की, क्योकि आत्मा पर को जानता ही नही है। वास्तव मे वह अपनी पर्याय मे पर्याय को ही जानता है। कितनी सूक्ष्म बात है! पर को जानता है–ऐसा कहना असद्भूतव्यवहारनय है। वास्तव मे तो त्रिकाली सामान्य आत्मा के विशेष मे विशेष को ही जानना है, पर को नही। यहाँ विशेष द्वारा पहले सामान्य को और फिर विशेष को जानने के लिए कहा है, क्योकि सामान्य को जानने पर जो ज्ञान होता है, वह अपने विशेष को भी यथार्थ जानता है।

सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो चक्षु कही है, पर को जाननेवाली तीसरी चक्षु नही कही। अपने विशेष मे परपदार्थ जान लिए जाते है, परन्तु वास्तव मे तो अपनी पर्याय ही जानी जाती है। अहो! कितनी गम्भीर टीका है। अनुक्रम शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् पहले सामान्य को देखना, फिर विशेष को देखना।

अपनी पर्याय मे जो विशेषता ज्ञात होती है, वह अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है, पर नही, इसलिये 'पर को जाननेवाली चक्षु बन्द करके'–ऐसा नही कहा, परन्तु अपनी पर्याय को जाननेवाली पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बन्द करके–ऐसा कहा है। अहाहा! कितनी गम्भीर वस्तु है। प्रवचनसार, समयसार और नियमसार की एक-एक गाथा अति गम्भीर और अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! तू पर को जानता ही नही है। केवली भगवान लोकालोक को जानते है–ऐसा कहना असद्भूत व्यवहारनय है। भाई! आत्मा और पर का सम्बन्ध ही क्या है? स्व और पर के बीच अत्यन्ताभाव की अभेद्य दीवार है। स्वद्रव्य की पर्याय और परद्रव्य की पर्याय के बीच भी अत्यन्ताभाव जैसी ही अभेद्य

दीवार है। अपनी एकसमय की पर्याय मे पर का प्रवेश ही कहाँ है? टीका मे भी कहा है कि आत्मा अपने विशेष को जानता है।

सामान्य को जानता है—पहले ऐसा कहकर फिर विशेष को जानता है—ऐसा कहा है। पर को जानता है—यह बात ही नही की।

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् अपनी पर्याय का लक्ष्य छोडकर मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा अवलोकन कर। जब पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिक दृष्टि बन्द की तो अब कुछ देखनेवाली दृष्टि रही या नही? हाँ, द्रव्य को देखनेवाली दृष्टि रही, इसलिये कहा कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। यह द्रव्यार्थिकनय प्रगटरूप (पर्यायरूप) ज्ञान है। यद्यपि है तो वह भी पर्याय, तथापि वह पर्याय, पर्याय को न देखकर द्रव्य को देखती है। पर्याय को जाननेवाली चक्षु सर्वथा बन्द की है, परन्तु ज्ञान सर्वथा बन्द नही हुआ, वह तो उघडा हुआ है और द्रव्य को जानता है। देखो, कैसी अद्भुत बाते हैं। भाई! यह तो तीन लोक के नाथ की दिव्यवाणी है।

भगवन्! तू सामान्य-विशेषस्वरूप है। तेरे विशेष मे पर को जानना है ही नही, क्योकि उसमे अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है। अब कहते है कि यह जो पर्याय ज्ञात होती है, उसे जानने वाली पर्यार्थिक चक्षु सर्वथा बन्द करने पर देखनेवाला अन्य कोई ज्ञानचक्षु रहा कि नही? भाई! द्रव्य को देखनेवाला ज्ञानचक्षु प्रगट उघाडरूप है। कहा है न कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख! पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द की है, परन्तु द्रव्यसामान्य को देखनेवाला ज्ञान तो उघडा ही है। जब पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया, तभी द्रव्य को देखने वाला ज्ञान प्रगट हो गया, क्योकि स्वय जाननहारा है। जाननेवाले

की पर्याय मे अँधेरा हो जाए अर्थात् जानना ही बन्द हो जाए – ऐसा तो कभी हो ही नही सकता।

अहाहा ! पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द कर दे। प्रभु ! ऐसा कहकर आप क्या कहना चाहते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं – तुझे शुद्ध त्रिकाली आत्मद्रव्य को देखना है न ? तो उसका ज्ञान पर्याय मे होता है, इसलिये कहते है कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। तात्पर्य यह है कि पर्याय को देखनेवाली ज्ञान की पर्याय सर्वथा बन्द हो जाने पर जो मात्र द्रव्य को जानती है – ऐसी अन्तर के ज्ञान की पर्याय प्रगट हो जाती है, उसके द्वारा द्रव्य को देख। ऐसी बात सुनने को ही नही मिली, इसलिये एकान्त है – ऐसा कहते है, परन्तु बापू ! यह एकान्त नही सम्यक-एकान्त है।

सन्त कहते है कि वस्तु को नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पाँच पर्यायस्वरूप देखनेवाली पर्याय की आँख बन्द कर दे। गजब बात है भाई ! सिद्धपर्याय को देखने वाली आँख बन्द कर दे। स्वय को वर्त्तमान मे सिद्धपर्याय नही है, परन्तु श्रद्धा मे है कि मेरी सिद्धपर्याय प्रगट होगी, इसलिये कहते हैं कि सिद्धपर्याय को देखनेवाली आँख भी बन्द कर दे।

समयसार मे **वन्दित्तु सव्वसिद्धे** कहकर ज्ञानपर्याय मे सर्व सिद्धो की स्थापना की है और यहाँ कहते है कि सर्व सिद्धो को जानने वाली पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिक आँख बन्द कर दे और मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। अहो ! यह तो सन्तो के हृदय की अथाह गहराई है। क्या कहे ? जैसा गहनभाव भासित होता है, वैसा भाषा मे नही आ सकता। यदि कोई ऐसा अभिमान करे कि हमने पढा है, हमे आता है तो उसका गर्व उतर जाए – ऐसी बात है।

भाई ! अपनी पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द कर दे, फिर भी देखना तो चालू रहेगा। जहाँ पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया,

वहाँ तुरन्त ही द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हुआ। यह ज्ञान अपने पुरुषार्थ से प्रगट हुआ है। जव खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाता है, तव नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को ही देखा जाता है। पर्याय मे दूसरी कोई चीज नही है, इसलिये देव-शास्त्र-गुरु और सिद्धो को भी निकाल दिया, मात्र सिद्धपना आदि पर्यायो मे रहनेवाले जीवसामान्य की वात की।

वहाँ देखने-जाननेवाली पर्याय रही कि नही ? हाँ, रही। जीवसामान्य को देखनेवाला द्रव्यार्थिकनय तो पर्याय ही है, परन्तु वह पर्याय को नही देखता, द्रव्यसामान्य को देखता है। भाई ! ऐसा कभी सुना नही, इसलिये नया लगता है, परन्तु यह तो भगवान त्रिलोकनाथ की आत्मस्पर्शी वाणी है।

प्रश्न :– 'एक जीवसामान्य को देखनेवाले' – ऐसा कहा है। यह 'सामान्य' क्या है ?

उत्तर :– सामान्य अर्थात् वदले विना कायम रहनेवाला अखण्ड एकरूप त्रिकाली आत्मद्रव्य। भाई ! सारे दिन व्यापार-धन्धे मे फँसे रहने से तुझे यह वात सूक्ष्म लगती है, परन्तु यह वात समझने के लिए विशेष समय निकालना चाहिए, यह तो तेरे हित की वात है।

परपदार्थों को देखना तो दूर रहा, देव-गुरु-शास्त्र तथा सिद्ध-पर्याय को देखनेवाली आँख भी वन्द करके, खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाए तो नारकपना आदि पर्याय-विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवालो को और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सव जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। अहाहा ! वह सव जीवद्रव्य है – ऐसा भासित होता है अर्थात् पर्याय-विशेष या भेद भासित नही होते, परन्तु उन विशेषो मे रहनेवाला अनन्त-अनन्त पूर्णशक्तियो का सागर, अखण्ड, एकरूप, भगवान आत्मा भासित होता

है। यह भाषा साधारण लगती है, परन्तु इसमे भरे हुए भाव बहुत गभीर और गहरे है। प्रवचनसार, नियमसार व समयसार की तो बात ही क्या करना ? भरतक्षेत्र मे यह बात अन्यत्र कही नही है। भाई ! जो इसप्रकार पुरुषार्थ करे, उसे वस्तु प्राप्त हुए विना नही रहे। 'सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है अर्थात् ज्ञात होता है।

पर्याय को देखनेवाली दृष्टि को सर्वथा बन्द करने पर नारकपना आदि पाँच पर्यायो मे रहनेवाला जीवसामान्य ही दिखाई देता है। पर मे या पर की पर्यायो मे तो व्यवहार से भी जीवद्रव्य नही रहता, परन्तु अपनी नारकादि पाँचो पर्यायो मे रहता है। ऐसे जीवसामान्य को देखनेवालो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है अर्थात् उक्त प्रकार से देखने पर जीवद्रव्य ही भासित होता है।

प्रश्न – प्रभु ! इस निकृष्ट पचमकाल मे भी जीवद्रव्य भासित होता है क्या ?

उत्तर :– प्रभु ! आत्मा को कोई काल बाधक नही होता। अरे ! जहाँ उसे पर्यायार्थिक नय भी लागू नही पडता, फिर काल की बात कहाँ रही ? यद्यपि आगे पर्यायार्थिक नय से देखने की बात करेंगे, परन्तु यहाँ पहले द्रव्यार्थिक नय से देखने की बात की है।

प्रश्न :– द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य को देखने के पश्चात् ही पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है न ?

उत्तर :– पर्याय का ज्ञान कब सच्चा होगा ? – यह बात यहाँ नही है। यहाँ तो पर्याय की आँख बन्द करके द्रव्य को देखने की बात है। 'जीवद्रव्य पाँचो पर्यायो मे रहनेवाला अखण्ड एकरूप तत्त्व है' – इसप्रकार देखनेवाला ज्ञान सच्चा है। 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है, इस बात पर वजन है। पर्यायार्थिक नय से पर्याय भासित होती है – ऐसा भी कहेगे, परन्तु ऐसा तो पर्याय का ज्ञान कराने के लिए कहेगे। यहाँ तो द्रव्यार्थिक नय से देखने की बात से प्रारम्भ किया है।

प्रभु ! तू अपनी पाँचो पर्यायो मे रहता है, फिर भी पर्याय को देखनेवाली आँख वन्द करके उघडे हुए द्रव्यार्थिक नय की चक्षु से तू जो वस्तु है, उसका अवलोकन कर ! तव तुझे 'वह सव जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होगा, तव ही तुझे अनन्त-अनन्त शक्तियो का अभेद एकस्वरूप पूर्ण परमात्मा ज्ञात होगा। अज्ञानी जीव ऐसी वात शान्ति से – धैर्य से वाँचे नही, विचारे नही, और कहते है कि एकान्त है, परन्तु भाई ! जैसा परिणाम करेगा, उसका वैसा ही फल तो होगा। असत्य का तो असत्य परिणाम ही आएगा।

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा पाँचो पर्यायस्वरूप विशेपो मे रहनेवाला जीवद्रव्य दिखाई देता है। देखो ! भले विशेप को देखनेवाली आँख वन्द कर दी, परन्तु जीव विशेषरहित नही है, वह तो विशेषो मे रहनेवाला सामान्य है। गजव वात है भाई ! जीवद्रव्य परपदार्थो मे तो नही रहता, परन्तु अपनी पाँचो पर्यायो मे रहता है। इसप्रकार सन्धि करके आचार्यदेव कहते हैं कि पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले तथा विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सव जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है।

देखनेवाली स्वय तो पर्याय है, परन्तु देखती है द्रव्य को। समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्य की टीका मे आता है "सकल निरावरण, अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर, शुद्ध-पारिणामिक, परमभावलक्षण, निजपरमात्मद्रव्य ही मैं हूँ" – ऐसा पर्याय जानती है, क्योकि जानने का कार्य द्रव्य मे नही, पर्याय मे होता है, इसलिए पर्याय ऐसा जानती है कि मैं निजपरमात्मद्रव्य हूँ। भले विशेपो मे रहता हूँ, परन्तु हूँ यह सामान्य ही। ३२० गाथा के समान यहाँ भी यही वात कही है कि जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेपो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सव जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है।

पर्यायार्थिक नय तो बन्द हो गया है, अत खुली हुई द्रव्यार्थिक नयरूप ज्ञानपर्याय, पर्यायविशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखती है। अहाहा ! दो-तीन पंक्तियो मे कितना सार भर दिया है। अहो ! केवली भगवान के आढतिया दिगम्बर सन्तो की वाणी मे अगाध गहराई है ! भगवान का तो विरह हो गया, परन्तु यह वाणी रह गई (अर्थात् आज तक उपलब्ध है), इस वाणी ने भगवान का विरह भुला दिया। पर्यायनय के बन्द हो जाने पर अन्दर विराजमान एकरूप तत्त्व को जाननेवाला ज्ञान खुल जाता है। जब पर्याय पर दृष्टि थी, तब द्रव्य को जाननेवाला ज्ञान अस्त था। अब पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया तो अन्तस्तत्त्व को देखनेवाला ज्ञान खुल गया। उस खुले हुए ज्ञान द्वारा विशेषो मे रहनेवाले जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। अरे प्रभु ! यह तो भागवत् कथा है, उसकी अगाधता के सामने क्षयोपशमज्ञान का क्या अभिमान करना ? अरे ! जब सन्त इसकी व्याख्या करते होगे, तब इसकी व्याख्या का पार भी नही मिलता होगा। भाई ! भगवान ने जितना अपने ज्ञान मे देखा, उसका अनन्तवॉ भाग दिव्यध्वनि मे कहा गया और जितना कहा गया, उतना भी झेला नही जा सका।

कहा भी है –

मुख ओंकार धुनि सुनि, अर्थ गणधर विचारे,
रचि आगम उपदिशै, भविक जीव संशय निवारे।

अहाहा ! यह बात दिव्यध्वनि के अनुसार आगम मे आई हुई है, और जो उसे जानता है, उसे सशय नही रहता। द्रव्य को जाननेवाले खुले हुए ज्ञान द्वारा जब विशेषो मे रहनेवाले शुद्ध सामान्यजीव को जाना; तब सशय नही रहता, मिथ्यात्व का अश भी नही रहता।

एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नहीं देखने वाले जीवो को – इस वाक्याश मे 'जीवो' कहकर वहुवचन का प्रयोग किया है अर्थात् वर्त्तमान पचमकाल मे पर्यायचक्षु को वन्द करके खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षु से देखनेवाले अनेक जीव सम्भावित है। पचमकाल के सन्त पचमकाल के श्रोताओ से यह वात कहते है अर्थात् पचमकाल मे भी अनेक जीव अपने शुद्ध त्रिकाली द्रव्य को देखेगे। आचार्य अपने श्रोताओ से यह नही कहते कि तुम से यह काम नही होगा; इसलिये भाई! मेरी समझ मे नही आता – यह वात छोड दे। प्रभु! जहाँ पर्याय को भी देखना वन्द करना है, वहाँ 'मैं यह नही जान सकता' – यह प्रश्न ही नही उठता। पर्याय को देखनेवाला ज्ञान सर्वथा वन्द करके जव द्रव्य को देखनेवाले ज्ञान द्वारा देखेगा, तभी तुझे सम्पूर्ण भगवान दिखेगा, अपने भगवान से तेरी भेट होगी। तेरा भगवान गुप्त नही रहेगा।

अहाहा! एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को – इसप्रकार वहुवचन प्रयोग करके पचमकाल के सन्त पचमकाल के अपने श्रोताओ से कहते है कि 'भगवन्! तू विश्वास ला! तुझमे अनन्त सामर्थ्य है! तू अनन्त वीर्य से भरा हुआ भगवान है! अतीन्द्रिय सुखामृत का सागर है! तू स्त्री, पुरुष या नपुसक नही है, अत शरीर को मत देख! आकृति को मत देख! पर को मत देख! अरे, तुझे वाहर कहाँ देखना है? ये सव तेरी जिस पर्याय मे ज्ञात हो रहे हैं, उस पर्याय को भी देखनेवाली अपनी पर्यायचक्षु को वन्द कर दे और खुले हुए ज्ञान द्वारा द्रव्य को देख – इससे तुझे अनन्त सुख का समुद्र भगवान आत्मा मिलेगा, तू निहाल हो जाएगा। अहाहा! अद्भुत वात है।

अनेक जीवो को द्रव्य को देखनेवाली खुली हुई आँख से 'यह सव जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। पर्याय को देखनेवाली

आँख पूरी वन्द कर दी, तव द्रव्य को देखनेवाली आँख से अतीन्द्रिय सुख का सागर, निर्मलानन्द प्रभु, आत्मा ज्ञात होता है अर्थात् आत्मद्रव्य इन्द्रियगम्य नही, विकल्पगम्य नही तथा पर्यायार्थिक नय द्वारा भी गम्य नही, मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा ज्ञात होने योग्य तत्त्व है ।

पहले पर्यायदृष्टि के समय द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान वन्द था । अवस्थाओ को ही देखनेवाली अपनी दृष्टि अपने स्वभाव को नही देखती थी । इसलिये कहा कि पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा वन्द कर दे । पर्याये अपने-अपने क्रम मे निश्चित समय मे होगी ही, परन्तु उन नारकादि पर्यायो को देखनेवाली आँख सर्वथा वन्द कर दे । इसका मतलव यह नही कि देखना ही सर्वथा वन्द हो गया । पर्याय को देखना वन्द किया तो तुरन्त ही द्रव्य को देखनेवाले द्रव्यार्थिक नय का ज्ञान खुल जाता है और उसमे पूर्णानन्द का नाथ चित्चमत्कार प्रभु आत्मा ज्ञात होता है । दिगम्वर धर्म के सिवाय अन्यत्र ऐसी वात कहाँ है ? और सव जगह तो वाह्य क्रियाकाण्ड की वाते है, परन्तु भगवन् ! जिससे भव का अन्त न हो, उससे क्या लाभ ? जिसप्रकार आत्मदृष्टि विना ८४ लाख योनियो के अवतार मे नरकादि के जो दु ख तूने भोगे है, उनका वर्णन तू नही सुन सकता, उसीप्रकार अपने को देखने से जो आनन्द आता है, उसकी भी वात क्या करना ? उसका वर्णन भी नही किया जा सकता ।

अहाहा ! जव द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा त्रिकाली एकरूप द्रव्य ज्ञात होता है, तव पर्याय को जाननेवाला यथार्थ ज्ञान प्रगट होता है । पहले ऐसा नही कहा कि द्रव्यार्थिक नय को वन्द करके पर्याय को देख, परन्तु पर्यायार्थिक नय की चक्षु सर्वथा वन्द करके द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख — ऐसा कहा है, क्योकि द्रव्य का यथार्थ स्वरूप भासित होने पर ही पर्याय यथार्थरूप से भासित होती है ।

अब कहते हैं कि **जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है; तब जीवद्रव्य में रहनेवाले नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना पर्यायस्वरूप अनेक विशेषों को देखनेवाले और सामान्य को न देखनेवाले जीवो को (वह जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है।**

देखो ! द्रव्य का ज्ञान तो हुआ है। यह सब सामान्य है, द्रव्य है, वस्तु है – ऐसा ज्ञान होने पर उस तरफ देखना-बन्द करके अर्थात् उस तरफ का लक्ष्य छोडकर ऐसा क्यो कहा ? क्योकि पर्याय भी अपनी है न ? पर्याय द्रव्य मे – अपने मे है, अत उसे देखने के लिए द्रव्यार्थिक नय की चक्षु बन्द करने के लिए कहते है।

बहुत सूक्ष्म बात है भाई ! यह तो केवलज्ञान को पाने की तैयारीवाले दिगम्बर सन्तो की वाणी है। इतनी सत्य बात अन्यत्र कहाँ है ? कठिन पडे, परन्तु क्या करे ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

पहले पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा द्रव्य को देखने की बात कही थी। अब पर्याय का ज्ञान कराना है, इसलिए द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके पर्यायार्थिक चक्षु से देखने की बात कहते है। पर्याय भी द्रव्य की है, द्रव्य मे है, जीवद्रव्य पर्याय मे रहा हुआ है, पर्याय मे वर्त्त रहा है, इसलिए यहाँ पर्याय का ज्ञान कराना है। पर को जानने की तो बात ही नही है, क्योकि परद्रव्य का तो स्वद्रव्य से कोई सम्बन्ध ही नही है। अरे ! जिस पर्याय मे परपदार्थ ज्ञात होते है, वह पर्याय भी स्वद्रव्य की है, उस पर्याय का परद्रव्य के साथ कोई सम्बन्ध नही है। वज्रवृषभनाराच सहनन के कारण भगवान को केवलज्ञान हुआ – ऐसा नही है।

यहाँ कहते हैं कि खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा पर्याय को देख ! यहाँ जाननेवाली पर्याय खुली हुई है। जैसे – द्रव्य को देखनेवाला

ज्ञान है, वैसे पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी है। जब द्रव्य को देखनेवाली द्रव्यार्थिक चक्षु बन्द हुई, तब पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिक चक्षु खुली है। इसलिए कहा है कि द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् द्रव्य की तरफ का लक्ष्य छोड़कर पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा देख। नारकादि पाँचो पर्यायें जीवद्रव्य मे रही है, परपदार्थों मे नही, अत यहाँ 'जीवद्रव्य मे रहनेवाले नारकपना' – ऐसा शब्द है अर्थात् पर्यायें स्वद्रव्य मे रहनेवाली है, परद्रव्य के साथ उनका कोई सम्बन्ध नही है। देखो ! ऐसा उपदेश है। अपरिचित व्यक्ति या क्रियाकाण्ड के आग्रहवाले को ऐसा लगे कि यह क्या कह रहे है ? परन्तु भाई ! यह तेरे घर की बात कह रहे हैं। तेरा घर कैसा है ? कितना महान है ? यह कभी तूने सुना नही, जाना नही।

द्रव्यार्थिक नय के चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् उस तरफ लक्ष्य नही है, उघडी हुई पर्याय की ओर लक्ष्य है। यहाँ उघडी हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा जीव की अवस्थाओ को देखने की बात है।

अहाहा ! अपने सामान्य और विशेष को ही देखना है, बाहर कही नही देखना है। भगवन् ! तेरे द्रव्य और पर्याय सिवाय शरीर, कर्म, कषाय इत्यादि बाहर का करना (अर्थात् पर का करना) तो अशक्य है, अरे इन्हे देखना भी नही है। भगवन् ! पर्यायार्थिक चक्षु से तू जो देख रहा है, वह तेरी पर्याय है।

जिसप्रकार यह बाह्य औदारिक शरीर है, उसीप्रकार परमपारिणामिकस्वभावभावरूप चैतन्यभगवान चैतन्यशरीर है। शास्त्र मे 'विग्रह' शब्द आता है। विग्रह अर्थात् शरीर तीन प्रकार के हैं। (१) चैतन्यशरीर, (२) कषायशरीर और (३) जडशरीर। औदारिक, तैजस, कार्माण, आहारक और वैक्रियक आदि सब जडशरीर है। जीव की पर्याय मे होनेवाले पुण्य-पापरूप विकारी परिणाम, नारकादि गतियो के उदयभाव आदि एव चैतन्य के विकृत शरीर अर्थात् कषाय-

शरीर है। शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव निजशरीर है, निजवस्तु है। इस निजचैतन्यवस्तु को देखने के लिए एक बार तो पर्याय की आँख बन्द कर।

स्व को देखा है, जाना है, पर्याय मे भी स्व-सामान्य वर्त्त रहा है, अत पर्याय को देखने के लिए स्व का – द्रव्यसामान्य का लक्ष्य छोड़कर पर्याय को देखनेवाली चक्षु द्वारा देखने के लिए कहते हैं। तेरी पर्याय के अस्तित्व मे औदारिकादि शरीर का एक अश भी नही है, तेरी पर्याय के अस्तित्व मे तो चार गतियाँ तथा सिद्ध पर्याय हैं। 'जीवद्रव्य मे रहनेवाली' – ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है न ? तेरी पर्याय मे जो नारकादि पर्यायो का अस्तित्व है, उसे देखनेवाली पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा जान ! लोगो को तो वाहर से धर्म करना है, परन्तु भाई ! वाहर तेरा अस्तित्व ही नही है, फिर वाहर से धर्म कैसे होगा ? यह वात सुनने की भी फुरसत नही है तो निर्णय कहाँ से करेगा ?

नारकादि गतियाँ पर्याय के अश मे है, अपनी त्रिकाली चीज मे नही हैं। दया, दान, भक्ति आदि मदकपाय के परिणाम भी अपनी पर्याय मे है, परन्तु अपनी त्रिकाली वस्तु मे नही हैं। जव निज परमात्म-स्वरूप, त्रिकाली, चैतन्यमय, जीववस्तु का ज्ञान हुआ, तभी पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी खुल गया। वह ज्ञान शास्त्र पढने से खुला है – ऐसा नही है। जीवसामान्य – त्रिकाल, ज्ञायकमूर्ति, प्रभु आत्मा को जानने पर पर्याय को देखनेवाला ज्ञान खुल गया है। भाई ! एकभवावतारी इन्द्र भी खरगोश के समान विनम्रता से वैठकर जिनकी वाणी सुनते हैं – ऐसे त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र परमेश्वर की यह वाणी है। इसकी गम्भीरता की वात क्या करे ?

जव पर्याय को देखनेवाली आँख वन्द की, सर्वथा वन्द की, तव तो द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा गया, परन्तु अव खुले हुए पर्यायार्थिक ज्ञान से जीव मे रहनेवाली पर्यायो को देख।

खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा नारकादिपर्यायस्वरूप विशेषो को देखनेवाले और सामान्य को नहीं देखनेवाले (सामान्य की ओर लक्ष्य नहीं करनेवाले) जीवो को वह जीवद्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है।

जीवद्रव्य मे वे पर्याये अन्य-अन्य भासित होती है। देवपर्याय जुदी, सिद्धपर्याय जुदी – इसप्रकार अन्य-अन्य भासित होती है।

द्रव्य उन-उन विशेषो के समय उन-उन विशेषो से तन्मय होने से अनन्य है – कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्नि की भाँति।

उन-उन विशेषो अर्थात् नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायो मे उस-उस काल मे जीवद्रव्य तन्मय है, परन्तु औदारिक शरीर, स्त्री, परिवार, मकान, पैसा आदि के साथ अशमात्र भी तन्मय नही है, क्योकि ये सब जीव से पृथक् वाह्य वस्तुएँ हैं।

कुछ लोग कहते है कि ऐसी वाते समझने के लिए तो बाबा (साधु) वनना पडेगा। परन्तु भाई! देह और रागादि से भिन्न होने के कारण आत्मा वावा ही है। भाई! तेरे त्रिकाली सामान्य स्वभाव मे चार गतियाँ तथा रागादि नही है, परन्तु यहाँ तो पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करना है, क्योकि पर्याय परपदार्थों के कारण नही है। 'जीवद्रव्य मे रहनेवाली' – ऐसा कहा है, 'जीव की पर्याय मे रहनेवाली' – ऐसा नही कहा, क्योकि जीवद्रव्य उन-उन पर्यायो से तन्मय है। पर्यायदृष्टि से जीवद्रव्य स्वय पर्याय मे ही है और पर्यायार्थिक नय से अन्य-अन्य भासित होता है। जीवसामान्य की दृष्टि से देखने पर, वही का वही अर्थात् अनन्य भासित होता है और पर्याय-दृष्टि से देखने पर अन्य-अन्य भासित होता है। भाई! यह जन्म-मरण से रहित होने की वात है। जैसे – आकाश मे बिजली की चमक होने पर धागे मे मोती पिरोना हो तो पिरो ले, यह मनुष्य भव

तो विजली की चमक जैसा ही क्षणिक है, जिनवाणी का योग अति दुर्लभ है।

त्रिकाली सामान्य तो अनन्य (एकरूप) ही है, वह अन्यरूप भासित नही होता; परन्तु यहाँ तो सामान्य को देखनेवाले को अपने विशेष को देखनेवाला ज्ञान खुला है – खिला है। पर्याय को देखनेवाले ज्ञान से देखने पर, विशेषो को देखनेवाले और सामान्य को नही देखनेवाले जीवो को वह (जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे उनसे तन्मय है। अहाहा ! परमस्वभावभाव, ज्ञायकभावरूप द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे उनसे तन्मय है; परन्तु शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियाँ, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, वाग-वँगला आदि मे कभी तन्मय नही होता, हो भी नही सकता। फिर भी अज्ञानी जीव अनन्तकाल से इन्ही मे तन्मय होकर इन्हे अपना मान रहे है। भाई ! जो चीज तेरी पर्याय मे भी नही है, तू उसे अपनी मानकर उसी की सभाल मे अभी भी समय गँवा रहा है। तुझे क्या करना है ? कहाँ रहना है ? – इसका निर्णय तो कर। क्या तुझे अपने ऊपर दया नही आती ? अनन्तकाल से तो चार गति मे रखड रहा है।

प्रश्न :– एक ओर तो आप कहते हैं कि त्रिकाली सामान्य वस्तु परमस्वभावभाव, शुद्धज्ञायकभाव मे गति नही, गुणभेद भी नही है, और यहाँ कह रहे हैं कि द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे तन्मय है – इन विरुद्ध कथनो का क्या आशय है ?

उत्तर :– भाई ! परमस्वभावभाव शुद्धज्ञायकभावरूप त्रिकाली समान्यवस्तु की दृष्टि कराने के लिए कहते है कि उसमे गति नही है, गुणभेद भी नही है, पर्याय भी नही है, और यहाँ वे विशेष उस काल मे उस द्रव्य के हैं – यह ज्ञान कराने के लिये कहते हैं कि उन-

उन विशेषो के काल मे द्रव्य उनमे वर्त्त रहा है। जहाँ जो अपेक्षा हो, उसे यथार्थ समझना चाहिए।

द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे तन्मय होने के कारण उन-उन विशेषो से अनन्य है। मनुष्यगतिरूप पर्याय मे जीवद्रव्य तन्मय है। मनुष्यगति अर्थात् मनुष्यशरीर नही, गतियोग्य उसकी अवस्थाविशेष हो मनुष्यगति है। मनुष्य के योग्य गति की योग्यता मे जीवद्रव्य तन्मय है। उन-उन विशेषो के काल मे तन्मय होने से द्रव्य उनसे अनन्य है अर्थात् जीवद्रव्य उस काल मे विशेषो से जुदा नही है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव जगत के सामने भगवान की वाणी का रहस्योद्घाटन करते हैं। भाई! तुझमे सामान्य और विशेष दो भाग है, इसके अलावा तीसरा कुछ भी (परद्रव्य का अश भी) त्रिकाल और त्रिलोक मे भी तुझमे नही है। जिसकी व्यवस्था और सम्हाल मे तू रुका हुआ है—ऐसे शरीर, वाणी, कुटुम्ब आदि का एक अश भी तुझ मे नही है। अहाहा! शरीर को सम्हाल के रखूं, अनुकूल भोजन करूँ, ऐसी भाषा बोलूं, परिवार को सगठित रखूं—इसप्रकार परद्रव्य की व्यवस्था का अभिप्राय मिथ्या है, क्योकि यह व्यवस्था तुझमे नही होती, तू पर का कुछ कर ही नही सकता। फिर भी भगवन्! तू इसमे मूर्छित हो रहा है। तुझे क्या करना है प्रभु? क्या तुझे रखडना ही है?

प्रश्न —शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्—ऐसा कहा है न?

उत्तर —यह तो निमित्त का कथन किया है। वास्तव मे तो राग से भिन्न पडना ही धर्म का साधन है। प्रज्ञा-ब्रह्मस्वरूप परमात्म-द्रव्य की दृष्टि और अनुभव करना ही साधन है। प्रज्ञा-ब्रह्मस्वरूप परमात्मद्रव्य का ज्ञान तो है, परन्तु साथ मे मनुष्यपनारूप जो गति है, उसका भी ज्ञान है। मनुष्यगति मे से देवगति मे जाएगा, क्योकि धर्मात्मा को तो मनुष्यगति से देवगति होती है। वहाँ भी

जीवद्रव्य उस देवगतिरूप विशेप मे तन्मय होगा। इसप्रकार द्रव्य विशेपो से तन्मय है, अत अनन्य है, अन्य नही है।

अहाहा! खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा देखने पर जीव अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि उन-उन विशेपो के काल मे द्रव्य तन्मय है। एक पर्याय के समय दूसरी पर्याय नही है, नारक पर्याय के समय मनुष्य पर्याय नही है तथा सिद्ध पर्याय के समय नरक या मनुष्य पर्याय नही है। एकसमय मे एक ही पर्याय है, इसलिए अन्य-अन्य पर्यायो की अपेक्षा जीव अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि वह उनमे तन्मय है।

देखो! क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक राजा इस समय प्रथम नरक मे हैं। वे वहाँ के सयोगो मे तन्मय नही है, अपितु नरकगतिरूप वर्त्तमान पर्याय मे तन्मय हैं, उस-उस काल मे वर्त्तमान जितनी ही तन्मयता है – यह ध्यान रखना चाहिए। वे स्वय सम्यग्दृष्टि हैं न? इसलिए गति को अपने स्वरूप से भिन्न जानते हैं, परन्तु उस दृष्टि के साथ मे पर्याय को देखनेवाला जो ज्ञान उनको है, वह जानता है कि यह नरक पर्याय मेरी है और मैं इस समय इसमे तन्मय हूँ। वे नरक से निकल कर क्षायिक सम्यक्त्व और तीन ज्ञान के साथ माता के पेट मे आनेवाले हैं, तीर्थंकर होनेवाले हैं। वे जानते हैं कि यह पर्याय मुझमे है और इससमय मैं उसमे तन्मय हूँ। यहाँ पर्यायार्थिक नय की वात है – यह ध्यान रखना चाहिए। द्रव्यार्थिक नय से तो द्रव्य मे गति ही कहाँ है?

कण्डे, तृण, पत्ते और काष्ठ की अग्नि के समान, द्रव्य विशेपो से तन्मय होने के कारण उन विशेषो से अनन्य है। जैसे तृण, काष्ठ इत्यादि की अग्नि उस-उस समय तृणमय, काष्ठमय आदि होने के कारण तृण, काष्ठ आदि से अनन्य है। उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषो के समय उन-उनमय (तन्मय) होने के कारण

उनसे अनन्य है, भिन्न नही है। काष्ठ की अग्नि स्वय काष्ठरूप परिणमी है न ? इसलिये काष्ठमय है। इसीप्रकार जीव भी स्वय पर्यायोरूप—गति आदि रूप परिणमा है, इसलिए उन पर्यायो—विशेषो से अनन्य है। अहाहा ! जिसने अपनी त्रिकाली वस्तु को जाना है, उसने अपनी पर्याय को भी जाना है और उस काल मे उस पर्याय मे स्वय तन्मय है—ऐसा जाना है। यह पर्याय कोई परद्रव्य मे हुई है—ऐसा नही है।

प्रश्न .—समयसार गाथा ६५-६६ मे ऐसा कहा है कि जीवस्थान के चौदह भेद नामकर्म के करण के कारण हुए हैं ? नामकर्म करण है और वे चौदह भेद उसके कारण हुए हैं ?

उत्तर —भाई ! वहाँ अखण्ड एक शुद्ध चैतन्यमय वस्तु भगवान ज्ञायक का लक्ष्य कराना है, शुद्ध निर्मलानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा का स्वरूप बताना है, इसलिए वे चौदह भेद आत्मा मे नही हैं—ऐसा कहा; जबकि यहाँ उसकी पर्याय के अश मे जितना नारकपना आदि है, उसका ज्ञान कराना है, इसलिए जीवद्रव्य उनमे उस समय तन्मय है—ऐसा कहा है। मनुष्यपना अर्थात् यह शरीर नही, अपितु अन्दर गति की योग्यतारूप अवस्थाविशेष है, उसमे उस समय जीव तन्मय है। जिस आकार की लकडियाँ या पत्ते होते हैं, अग्नि उसी आकारमय हो जाती है, दाह्याकार से तन्मय हो जाती है, उससे जुदी नही रहती। उसी प्रकार आत्मा चार गति और सिद्ध अवस्था मे जिस पर्याय को प्राप्त करता है, उससे उस काल मे तन्मय हो जाता है।

प्रश्न :—कही ऐसा कथन भी आता है कि जिस प्रकार अग्नि तृणादिरूप परिणमित नही होती, उसी प्रकार आत्मा गति आदि पर्यायरूप परिणमित नही होता—वहाँ क्या अपेक्षित है ?

उत्तर :- भाई ! वह कथन द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा है, परन्तु द्रव्यदृष्टिवन्त को पर्याय का ज्ञान होने के काल मे, वह पर्याय किस रूप है ? यहाँ उसका ज्ञान कराया है।

यह प्रवचनसार ज्ञानप्रधान ग्रन्थ है।

जैसे अग्नि उस-उस काल मे लकडी, कण्डे, पत्त इत्यादि के आकाररूप पर्याय मे तन्मय है, उसी प्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषो के काल मे उन-उन पर्यायमय अर्थात् तन्मय है, उनसे अनन्य है, भिन्न नही है। जैसे शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, वैसे गतिरूप पर्याय भी जीव से भिन्न है – ऐसा नही है, बल्कि द्रव्य पर्याय से अनन्य है – तन्मय है। बेचारे भोले अज्ञानी जीवो ने ऐसा उपदेश भी जब कभी नही सुना तो विचार करने का अवसर कहाँ से मिलेगा ? दिन-रात कमाई और स्त्री-पुत्रादि की सम्हाल से फुरसत मिले तव न ? परन्तु भाई ! यह सब तो पापभाव है। अरे, भगवन् ! यदि यह वात न समझो तो पाप की पोटली के भार से तू भवसमुद्र मे डूब जाएगा।

यहाँ कहते हैं कि जिसने एक शुद्धद्रव्य को जाना है, उसे पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी उघडा है और वह इससे जानता है कि यह विशेष – पर्याय मुझमे है, अन्य कोई चीज मुझमे नही तथा मैं उनमे नही। स्त्री-पुत्र इत्यादि मेरे है – यह सव झूठी बाते है, क्योकि मैं उनमे तन्मय नही तथा वे वस्तुएँ मुझमे तन्मय नही हैं। ऐसी वस्तु-स्थिति है, फिर भी अज्ञानी परपदार्थों को अपना मान वैठा है। भाई ! दुनिया को जमे या न जमे, वस्तुस्थिति तो यही है। जिसे अपनी आत्मा के सिवाय वाहर की चमक मे जरा भी वीर्य उल्लसित हो या उसमे जरा भी 'यह ठीक है' – ऐसा लगे, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे न तो द्रव्य का ज्ञान है, न पर्याय का।

अपने द्रव्य और पर्याय के सिवाय परपदार्थ का चाहे जितना वैभव दीखे, उसका आत्मा के द्रव्य व गुण से तो क्या ? पर्याय से भी

कोई सम्बन्ध नही है। तेरी पर्याय मे जो गति हुई है, सिर्फ उससे तेरा सम्बन्ध है और उस समय तू उसमे तन्मय है। ध्यान रहे मात्र उसी समय तन्मयता है, क्योकि पर्याय सदा वही की वही नही रहती। मनुष्यगति से बदलकर एकदम देवगति हो जाएगी, देवगति से बदलकर एकदम मनुष्यगति हो जाएगी और फिर मनुष्यगति से बदलकर एकदम सिद्धदशा हो जाएगी, इसलिए वे पर्याये जुदी-जुदी होगी, फिर भी उस समय तू उनसे अनन्य है। इसप्रकार अन्य-अन्य होते हुए भी अनन्य है। यहाँ तो पाँच पर्याये है, उन्हे परस्पर अन्य-अन्य कहा, परन्तु उस समय तो उनके साथ तन्मय होने से द्रव्य अनन्य है। अहो! सन्तो ने तो अमृत की बेल बोई है।

अरे भाई! द्रव्य मे जिससमय, जिसक्षेत्र मे, जिसप्रकार, जो होनेवाला है, उसीसमय, उसीक्षेत्र मे, उसीप्रकार, वही अवश्य होगा, उसमे फेरफार नही हो सकता। परद्रव्य की पर्याय तुझे छूती भी नही है तो फिर भगवन्! तुझे किसकी चिन्ता है? पर्यायार्थिक नय से पर्याय के अस्तित्व मे विद्यमान पाँचो गतियो मे उस-उस काल मे द्रव्य स्वय तन्मयपने है, परन्तु पर मे कभी तन्मय नही होता — ऐसा ज्ञानी जानते है। मनुष्यगति की पर्याय के समय द्रव्य उससे तन्मय है, उस समय सिद्धगति आदि नही है और सिद्धपर्याय के समय द्रव्य उससे तन्मय होगा, उस समय देवादि अन्य ससार-पर्यायो से तन्मय नही होगा। इसप्रकार उन-उन विशेषो के समय उन मय होने के कारण उस-उस काल मे द्रव्य उनसे अनन्य हैं, जुदा नही — ऐसा ज्ञानी यथार्थ जानते हैं। पर्याय से देखने पर द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है, तो भी पर्याय मे तन्मय होने से द्रव्य अनन्य भी है।

यहाँ तक एक आँख बन्द करके, खुली हुई दूसरी आँख द्वारा देखने की बात की।

अब तीसरी बात करते हैं।

और जब उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो आँखो को एक ही साथ खोलकर उनके द्वारा और इनके द्वारा (द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओ के द्वारा) देखा जाता है; तव नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायो मे रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीवसामान्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धत्व – इन पर्यायस्वरूप विशेष, तुल्यकाल मे (एक ही साथ) दिखाई देते हैं।

देखो ! यहाँ प्रमाण की बात की है। तुल्यकाल अर्थात् एक ही समय मे सामान्य को जाने और विशेष को भी जाने। ध्यान रहे कि यहाँ जानने की बात है, आदर तो एक द्रव्यसामान्य का ही है; विशेष का नही है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जैसे सामान्य को जानता है, वैसे विशेष को भी जानता है; मात्र जानने की अपेक्षा है। उपादेय तो एक शुद्ध आत्मद्रव्य ही है। विशेष (पर्याय) आश्रय करने योग्य नही है। यहाँ तो प्रतिसमय द्रव्य और पर्याय का अस्तित्व किसप्रकार है – उसकी सिद्धि करते है।

जब द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो चक्षुओं को एक ही साथ खोलकर देखा जाता है तब…… ।

देखो, यहाँ क्षयोपशमज्ञान मे दोनो को जानने का उघाड है, इसलिए कहा है कि दोनो चक्षुओ द्वारा एक ही साथ देखने पर सामान्य द्रव्य भी दीखता है और वह पर्यायो मे तन्मय है – ऐसा भी दीखता है; दोनो एक साथ दीखते हैं। यहाँ जानने की अपेक्षा बात है।

अहाहा ! जब दोनो चक्षुओ द्वारा देखा जाए, तब पाँचों पर्यायों मे रहनेवाला जीवसामान्य और जीवसामान्य मे रहनेवाली पाँचो पर्यायें एक साथ दिखाई देती हैं। जीवद्रव्य एक ही साथ नारकत्वादि

पाँचो पर्यायो मे रहता है – ऐसा नही है, परन्तु उस-उस समय एक-एक पर्याय मे रहता है, इसप्रकार अलग-अलग समयो मे पॉचो पर्यायो मे रहता है – ऐसा समझना चाहिए ।

पहले द्रव्य को मुख्य और पर्याय को गौण करके सामान्य को दखने के लिए कहा था तथा पर्याय को देखते समय सामान्यद्रव्य को मुख्यपने देखना छोड दिया था, लेकिन अब दोनो को एकसाथ देखनें के लिए यह प्रमाणज्ञान कहा है । पर को देखने की यहाँ वात ही नही की, क्योकि उसका यहाँ प्रश्न ही नही है । पर को जाननेवाली पर्याय अपनी है, पर की नही, पर के कारण भी नही । पर को जानती है, इसलिए वह पर्याय पर के कारण हुई है – ऐसा नही है । भाई ! यह तो मात्र अपने द्रव्य और पर्याय के सिवाय अनन्त परद्रव्य और उनकी पर्यायो मे गर्व (ममत्व और कर्त्तृत्व) को उठा देनें की वात है । यदि पर मे जरा भी गर्व रहा तो आत्मा की मृत्यु ही समझो ।

अहाहा, भगवन् ! तू त्रिकाली सामान्यद्रव्य है और पाँच पर्यायें तेरी विशेष है, उन पर्यायो के काल मे तू उनमे तन्मय है । पाँचो पर्यायो मे एक साथ नही, अपितु उस-उस गति के काल मे ही उसमे तन्मय है । इसप्रकार पर्याय-अपेक्षा अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्य अपेक्षा अनन्य है, परन्तु परद्रव्य के साथ कभी भी अनन्य नही है । एक गति की पर्याय के समय दूसरी गति नही होती, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य है, परन्तु उस पर्याय से अनन्य है । द्रव्य अन्य द्रव्यो के साथ त्रिकाल मे एकसमय भी अनन्य नही होता ।

दखो ! यह पुस्तक और इसके पन्ने अन्य द्रव्य की पर्यायें हैं, इनका जानना भी वास्तविक कहाँ है ? क्योकि उन्हे जानने के काल मे तो तू अपनी ज्ञानपर्याय मे तन्मय है, उन पदार्थों मे नही । शास्त्रादि को जाननेवाली ज्ञानपर्याय भी कही उनमे (शास्त्रादि मे)

तन्मय नही हो जाती। दूसरे समय विशेष ज्ञात हुआ तो उस काल मे भी वह ज्ञान पर के साथ तन्मय नही है। पर्याये अन्य-अन्य है, इसलिए पर्याय की अपेक्षा द्रव्य अन्य-अन्य है; परन्तु द्रव्य की अपेक्षा अनन्य है, क्योकि पर्याय द्रव्य से कोई जुदी नही है। भाई! परद्रव्य और उसकी पर्याय तो स्वद्रव्य और अपनी पर्याय से विलकुल भिन्न है। अहाहा! जिस शरीर के साथ पचास-पचास या सौ-सौ वर्ष विताए हैं – ऐसे शरीर के साथ भी आत्मा एकसमय के लिए भी तन्मय नही हुआ। जवकि पर्यायदृष्टि से देखने पर अपनी पर्याये अन्य-अन्य होते हुए भी, उनमे वर्त्तता होने के कारण द्रव्य उनसे अनन्य है।

अव कहते है कि **एक आँख से देखा जाना, वह एकदेश अवलोकन है और दोनो आँखो से देखना, वह सर्वावलोकन (सम्पूर्ण अवलोकन) है; इसलिए सर्वावलोकन मे द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नहीं होते।**

देखो! एक चक्षु द्वारा देखने पर एक देश – एक भाग का ज्ञान होता है और दोनो आँखो से देखने पर सम्पूर्ण ज्ञान होता है। यह वात जानने की अपेक्षा है। आदरणीय क्या है? यह वात यहाँ नहीं है, क्योकि आदरणीय तो क्षायिकभाव भी नही है।

प्रश्न :– नियमसार, गाथा ५० मे तो क्षायिकभाव को भी परद्रव्य, परभाव और हेय कहा है, जवकि यहाँ कहते है कि द्रव्य गति के उदयभाव मे भी तन्मय है – यह कैसी वात है?

उत्तर :– भाई! नियमसार मे वहाँ उपादेयरूप शुद्ध अन्त तत्त्व, एक, शुद्ध, ज्ञायकभाव का लक्ष्य कराने का प्रयोजन है और यहाँ जिसे अन्त तत्त्व का भान हुआ है, उसके द्रव्य-पर्याय का प्रतिसमय अस्तित्व कैसा है – यह वताने का प्रयोजन है। यहाँ ज्ञानप्रधान शैली है। वापू! इस ग्रन्थ की एक-एक गाथा खूव गभीरता से

भरी हुई है। कोई ऊपर-ऊपर से पढ़ ले तो वह इसका मर्म कैसे समझेगा ?

अब कहते हैं कि सर्व-अवलोकन में द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नहीं होते।

द्रव्य का अन्यत्व अर्थात् भिन्न-भिन्न पर्यायपना और अनन्यत्व अर्थात् वर्त्तमान अपेक्षा पर्याय से द्रव्य की अभिन्नता – इन दोनों में कोई विरोध नहीं आता। जो गतिरूप पर्याय है, वह अपने-अपने समय में एक-एक है, इसलिये अन्य-अन्य है। संसार की चार गतियों के काल में सिद्धत्व नहीं है तथा सिद्धत्व के काल में संसार की चार गतियाँ नहीं हैं – इस अपेक्षा से द्रव्य को अन्यत्व है और आत्मा उनमें उस-उस समय तन्मय है, इसलिए अनन्यत्व भी है। इसप्रकार सर्व-अवलोकन में द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व में विरोध नहीं आता।

सारे दिन स्त्री-पुत्र की सम्हाल में लगे रहनेवाले जगत को, ऐसी सूक्ष्म बात कैसे समझ में आ सकती है। अरे रे! जिसे तत्त्व सुनने के लिए भी फुरसत नहीं है, वह कहाँ जाएगा? बहुत से जीवों को धर्म तो दूर, पुण्य का भी ठिकाना नहीं है – ऐसे जीव तो मरकर तिर्यञ्च गति में जाएँगे। यहाँ तो जीव को पर के सम्बन्ध से सर्वथा भिन्न बताया है, फिर भी वह पर की व्यवस्था में अटक रहा है। भगवन्! स्त्री, पुत्र, मकान, गहने, कपड़े, शरीर, इज्जत – ये सब अपने-अपने में हैं, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी प्रभु! तू इनमें रुक गया है, तूने अपने को नहीं देखा, अपने द्रव्य-पर्याय का स्वरूप नहीं जाना। यहाँ तो तेरे द्रव्य-पर्याय का ही स्वरूप बताया गया है।

भावार्थ पर प्रवचन

प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिए प्रत्येक द्रव्य वैसा का वैसा भी रहता है और बदलता भी है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेपात्मक है, अर्थात् द्रव्य मे जो विशेष-पना भासित होता है, वह उसका स्वरूप है। कोई विशेष परद्रव्य के कारण होता है – ऐसा नही है। सामान्य तो ध्रुव है। विशेष – पर्याय मे जो परिवर्तन होता है, उसमे पर की अपेक्षा नही है, क्योकि परिवर्तन होना पर्याय का स्वय स्वभाव है, इसलिये स्वद्रव्य की पर्याय मे किसी अन्य द्रव्य की अपेक्षा है ही नही। सम्पूर्ण विश्व मे अनन्त-अनन्त द्रव्य सामान्य-विशेपपने विराज रहे है, इसलिये उन्हे अपने विशेप के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नही है। उनकी अवस्थाओ को किसी काल या किसी क्षेत्र मे पर की अपेक्षा नही है। प्रत्येक द्रव्य की अवस्था अपने काल मे स्वतन्त्र हो – ऐसा ही उसका सामान्य-विशेष स्वरूप है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्यपने – ध्रुवपने रहता है, जिसमे वदलाव नही है अर्थात् वैसा का वैसा ही रहता है तथा विशेषपने वदलता भी है। अहाहा! पलटना यह तो उसकी पर्याय का स्वभाव ही है, इसलिये पर्याय किसी अन्य के कारण पलटती है – ऐसा तीनकाल मे भी नही है। जीव या पुद्गल किसी भी द्रव्य का नरक-निगोद या स्कन्धरूप किसी भी पर्यायरूप होना, उसका स्वभाव है; इसलिये यदि वह विशेष किसी पर के कारण उत्पन्न होता हुआ लगे तो वह दृष्टि विपरीत है। यह वात अज्ञानी के गले उतरना मुश्किल है, परन्तु क्या करे? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। शब्द तो सादे हैं, परन्तु भाव वहुत गम्भीर है।

अहा ! वस्तु का अस्तित्व अनन्त परपदार्थों से भिन्न है। आकाश के एक प्रदेश मे रहते हुए भी छहो द्रव्य भिन्न-भिन्न है। जीव असख्यात प्रदेशी है, इसलिए एक जीव आकाश के एक प्रदेश मे नही रह सकता, असख्यात प्रदेशो मे रहता है। फिर भी यहाँ ऐसा कहते है कि जोव अपने असख्यात प्रदेशो मे रहता है, उसे आकाश की अपेक्षा नही है। वास्तव मे तो जीव के प्रदेश आकाश के प्रदेशो को छूते भी नही है।

प्रश्न :— आकाश न हो तो सभी द्रव्य कहाँ रहेगे ? — ऐसा कथन आता है न ?

उत्तर :— भाई ! यह तो निमित्त की कथनी है। ऐसा कथन भी तो आता है कि यदि आकाश परद्रव्यो को आधार हो तो आकाश का आधार कौन है ? तथा प्रत्येक द्रव्य के परिणमन मे काल का निमित्त है तो काल के परिणमन मे कौन निमित्त है ? भाई ! जब निमित्त की सिद्धि करना हो तब ऐसा कहा जाता है कि आकाश न हो तो सभी द्रव्य कहाँ रहेगे ? परन्तु इससे ऐसा नही समझना चाहिए कि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य की पर्याय मे कोई भी परिवर्तन कर सकता है, क्योकि ऐसा वस्तु-स्वरूप ही नही है।

चौदह ब्रह्माड मे अनन्त द्रव्य हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने से ही सामान्य-विशेषपने रहता है। अक्रिय, ध्रुवरूप, सामान्य को तो पर की अपेक्षा नही है, परन्तु जिसमे अनेक भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती है — ऐसे विशेष को भी पर की अपेक्षा नही है। विशेष भी द्रव्य का सहजस्वरूप ही है। जो पलटना होता है, वह उसका स्वय का स्वभाव ही है। विशेषपना पर के कारण हो — ऐसा वस्तुस्वरूप ही नही है। आत्मा को अपने सामान्य और विशेष के लिए किसी भी परद्रव्य की — यहाँ तक कि तीर्थंकर की भी अपेक्षा नही है।

प्रश्न :– शास्त्र मे तो आता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सद्गुरु के चरण-कमलो के प्रसाद से होती है ?

उत्तर :– हाँ, ऐसी भाषा तो बहुत आती है, परन्तु यह कथन तो सम्यग्दर्शन के काल मे कैसा निमित्त होता है – यह बताने के लिए किया जाता है। आत्मा ध्रुव सामान्यरूप है और सम्यग्दर्शन उसका विशेष है, पर्याय है। वह विशेष आत्मा का ही स्वरूप है, इसलिए वह किसी पर की अपेक्षा नही हुआ है। गुरु के प्रसाद से या दर्शनमोह के अभाव से सम्यग्दर्शन पर्याय हुई हो – ऐसा नही है। यदि ऐसा हो तो वहाँ द्रव्य के विशेष की – पर्याय की अपनी स्वय की सामर्थ्य का अभाव होगा।

तत्त्वार्थसूत्र मे आता है 'तद्भाव. परिणाम.' अर्थात् परिणाम द्रव्य का स्वभाव है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अपने सामान्य और विशेष को छोडकर परपदार्थो से अत्यन्त उदास है। किसी परपदार्थ की अपेक्षा मुझमे कुछ फेर पड जाएगा या मेरे कारण पर मे कुछ फेर पड जाएगा – ऐसी दृष्टि (मान्यता) सम्यग्दृष्टि की नही है। भाई ! बात तो थोडी है, परन्तु उसकी गभीरता अपार है।

अब कहते है कि **द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होने से द्रव्य के अनन्यत्व और अन्यत्व मे विरोध नहीं है।**

द्रव्य सामान्य-विशेषस्वरूप ही है, इसलिए 'कोई पर्याय पहले नही थी और अब हुई है' – इस अपेक्षा अन्य-अन्य है, परन्तु उस-उस पर्याय मे द्रव्य तन्मय है, इसलिए अनन्य है। इसप्रकार अन्यपना भी कहा जाता है और अनन्यपना भी कहा जाता है, दोनो मे कोई विरोध नही है। मनुष्यगति के समय सिद्धगति आदि नही है और सिद्धपद के समय मनुष्यगति आदि नही है, इसलिए अन्य-अन्य कहा जाता है और उस-उस काल मे द्रव्य उस-उस पर्याय मे तन्मय है, इसलिए

अनन्य भी कहा जाता है। इसप्रकार द्रव्य के अनन्यपने और अन्यपने मे कोई विरोध नही है।

अब उदाहरण देते है कि जैसे मारीचि और भगवान महावीर **का जीवसामान्य की अपेक्षा से अनन्यत्व और जीव के विशेषो की अपेक्षा से अन्यत्व होने मे किसी प्रकार का विरोध नहीं है।**

अहाहा ! कहाँ मारीचि की पर्याय और कहाँ भगवान महावीर की पर्याय। पर्यायो की अपेक्षा देखने पर उनमे अन्यपना भासित होता है, फिर भी उन अवस्थाओ मे जीव तो वही का वही है, इसलिए द्रव्य की अपेक्षा – जीवसामान्य की अपेक्षा अनन्यपना भासित होता है। इसप्रकार अन्यपना और अनन्यपना वस्तुस्वरूप मे ही है, उनमे कोई विरोध नही है तथा पर की अपेक्षा भी नही है।

द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षु से देखने पर द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् वही का वही भासित होता है।

देखो ! पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द करके द्रव्य को देखने वाली आँख खोले तो एक द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् वही का वही भासित होता है।

और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी एक चक्षु से देखने पर द्रव्य के पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते हैं, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है।

पर्यायो मे तो बहुत अन्तर दिखाई देता है। कहाँ मारीचि की मिथ्यादर्शनरूप अवस्था और कहाँ भगवान महावीर की तीर्थंकर केवलीरूप अवस्था ? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। कहाँ निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भागरूप ज्ञानपर्याय और कहाँ वहाँ से निकलकर

मनुष्य होकर आठ वर्ष मे ही प्राप्त होनेवाली केवलज्ञान पर्याय ? उन पर्यायो मे जीवसामान्य तो वही है (एक ही है), परन्तु विशेष की अपेक्षा से अन्यपना भासित होता है, अन्तर भासित होता है।

निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भाग ज्ञान का उघाड है। वहाँ भी शुभभाव होता है, इसलिए कोई जीव वहाँ से निकल कर मनुष्य भी होता है। इस मनुष्य पर्याय मे आठ वर्ष की उम्र मे भी पूर्ण सामर्थ्य से भरे हुए भगवान आत्मा की दृष्टि करके, उसमे ही ठहरकर यह जीव केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। देखो, कहाँ निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भागरूप ज्ञान और कहाँ मनुष्यपने मे केवलज्ञान – एकदम इतना अन्तर ! वीतराग का मार्ग अचिन्त्य और अलौकिक है, परन्तु लोगो ने दया, दान, प्रतिक्रमण, सामायिक, उपवास आदि क्रिया-काण्ड मे धर्म मान लिया है। बाह्यव्रत मे सवर और तप-उपवास मे निर्जरा मान ली है। अरे रे, प्रभु ! तूने क्या से क्या मान रखा है ? भगवान के द्वारा कहे हुए अलौकिक द्रव्य और पर्याय – दोनो की तुझे खबर नही है। यहाँ कहते हैं कि भले पर्याय मे अन्तर मालूम पडता है, इसलिए अन्यपना भासित हो; परन्तु उन पर्यायो मे द्रव्य तो वही का वही है, इसलिए द्रव्य की अपेक्षा तो अनन्यपना है।

कोई अरबपति यहाँ गादी पर बैठा हो, पचीस-पचास नौकर हो, सब लोग सलाम करते हो, परन्तु आयु पूरी हो जाए तो मर कर नरक जाए। देखो ! यहाँ पर्याय अपेक्षा अन्यपना है। क्षण मे दूसरी पर्याय और क्षण मे दूसरी पर्याय – इसप्रकार भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं, परन्तु वे पर्यायें आत्मा से भिन्न हैं – ऐसा नही है। आत्मा से तो वे अनन्य ही है, क्योकि उनमे आत्मा ही वर्त्तता है। पर्याय से देखो तो द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है, परन्तु द्रव्य से देखने पर तो अनन्य है, क्योकि पर्याय, द्रव्य से भिन्न नही है तथा द्रव्य, पर्याय से भिन्न नही है।

अब कहते है कि दोनो नयरूपी दोनो चक्षुओ से देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्य के विशेष दोनो ज्ञात होते हैं; इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनो भासित होता है।

वस्तु स्वय त्रिकालध्रुवरूप भी है और वर्तमानपर्यायरूप भी है – इसप्रकार दोनो भासित होते है। द्रव्य-पर्याय का ऐसा स्वरूप समझने की फुरसत न निकाले तो मनुष्यपना व्यर्थ चला जाएगा, क्योकि मनुष्यत्व का जितना काल निश्चित है, उतना ही है। यदि द्रव्य की सामान्य-विशेष शक्तियो का ज्ञान नही किया, और पर के कारण मुझमे कुछ फेरफार होता है तथा मेरे कारण पर मे कुछ फेरफार होता है – ऐसा मानकर प्रवर्त्तन किया तो प्रभु ! तेरा परिभ्रमण नही मिटेगा, विपरीत दृष्टि के कारण तेरा भव-भ्रमण का चक्र नही मिटेगा; इसलिये द्रव्य-पर्याय का यथार्थ निर्णय करके द्रव्य-सामान्य का आश्रय ले और उसमे लीनता कर, तो तुझे अविनाशी, अनन्त, अतीन्द्रिय, आनन्दमय, सिद्धपर्यायरूप विशेष प्रगट होगा।

तत्रांशिन्यपि नि-शेषधर्माणां गुणतागतौ।
द्रव्यार्थिकनयस्यैव व्यापारान्मुख्यरूपतः॥

जिस अंशी या धर्मी मे उसके सब अंश या धर्म गौण हो जाते हैं, उस अंशी मे मुख्यरूप से द्रव्यार्थिकनय की ही प्रवृत्ति होती है अर्थात् ऐसा अंशी द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

– आचार्य विद्यानन्दि, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, नयविवरण, श्लोक ८

रत्न-कणिकाएँ

मैंने तो यह वात पहले भी सुनी है – ऐसा मत मान ! क्योंकि जिसका वीर्य उछलता हुआ अन्दर जाए, उसका सुनना ही वास्तविक मे सुनना है ।

★

अहो ! अज्ञानी जिसकी जरूरत है, उसकी दरकार नही करता और जिसकी जरूरत नही है, सारे दिन उसी की दरकार करता है ।

★

मोक्षार्थी को पहले आत्मा को जानना चाहिए, मोक्ष या उसके उपायरूप सवर-निर्जरा को नही ।

★

मिथ्यात्व को एक वार मार डाल ! और सोते हुए जीव को जागृत कर !!

★

इतना सुनने-समझने के वाद अव यह काल घवराने का नही, अपितु घवराहट टालने का है ।

★

स्व-परप्रकाशक स्वभाव होते हुए भी स्व के ज्ञान विना पर का यथार्थ ज्ञान नही होता ।